TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180317
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/V31Pe Accession No. G.H. 1989

Author वर्मा, वृन्दावनलाल।

Title पीले हाथ। 1948

This book should be returned on or before the date last marked below.

पीले हाथ

(सामाजिक नाटक)

वृन्दावनलाल वर्मा

(लेखक—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, मुसाहिबजू,
गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई,
लगन, राखी की लाज, बास की फांस, आदि)

प्रथम संस्करण

'मयूर-प्रकाशन'
स्वाधीन प्रेस. झांसी।

मूल्य ।।।)

प्रकाशक —
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल्—एल. बी.
मयूर-प्रकाशन, झाँसी।

प्रथमबार—१९४८

अनुवाद और चित्रपट निर्माण आदि के सर्वाधिकार लेखक के अधीन है।

मूल्य ।।।) आना

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झाँसी।

परिचय

—:※:—

कुछ वर्ष हुए झांसी से मऊ रानीपूर एक बरात गई थी। दोनों समधी सुधारवादी थे, परन्तु खातिरदारी की कमी के कारण दोनों में मन मुटाव हो गया। बात चीत हो पड़ी। थप्पड़ घूंसे—और शायद लाठी—की भी नौबत आजाती, परन्तु लड़की का पिता बर के पिता से केवल इतना ही कह कर रह गया—

'मैंने आपके पैर पूजे हैं, पीठ नहीं पूजी है।'

एक घटना हाल की है। दोनों काफ़ी शिक्षित। लड़के के पिता जज। लड़की वाले ने बरात के डेरे में दावत देने की सूचना भेजी। जज होते हुए भी बर के पिता पुरातन पन्थी थे—बरात के डेरे में सभी प्रकार के भोजन पान और नृत्य गान के प्रेमी! बिचारा लड़की वाला ही तो था। उसको सब प्रकार के तक़ाज़े पूरे करने पड़े। बरात के डेरे में ही दावत देने के अनुरोध पर लिखी हुई फटकार खानी पड़ी। रस्म रिवाज के ख़िलाफ़ बरात के डेरे में लड़की वाला दावत देने का साहस करे!

दहेज, लेन देन, टीक ठहराव इत्यादि की प्रथा हिन्दू समाज में स्त्री के नीचे स्थान के कारण जारी है। जातियों और उपजातियों की सभाओं में इसके विरुद्ध हर साल प्रस्ताव पर प्रस्ताव स्वीकृत होते हैं। उन प्रस्तावों की अभी स्याही भी न सूखी होगी—इधर पढ़े लिखे लड़कों का नीलाम शुरू हो गया है!

जो सोलह आना सुधार की क़सम खाते हैं वे भी बरात की खातिरदारी कराने पर सिर मुड़ाए फिरते हैं। जो लोग ठीक ठहराव के जघन्य

व्यवसाय से दूर रहते हुए भी खातिरदारी को अपने बड़प्पन का और स्त्री के पद की निम्नता का रूप देते हैं उनको गथाप्रसाद में अपना समकालीन मिलेगा।

बराबरी वालों की आपसी खातिरदारी और बात है, पर छोटा समझा जाने के कारण बड़े की जो खातिर बरात के अवसर पर करता है उसका समर्थन स्त्री के निम्न पद के सिवाय और कौन करेगा?

झांसी
ता० २८-११-४८

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

पुरुष—

बन्सीलाल—निर्मला का पिता

गयाप्रसाद—वीरेन्द्र का पिता

वीरेन्द्र—एक युवक जिसके साथ निर्मला का विवाह होता है।

सोहनपाल—वीरेन्द्र का मित्र और बराती सनकी स्वभाव वाला।

केदारनाथ—गयाप्रसाद का व्यौहारी और मित्र, एक बराती।

बादन-मंडली, कुछ बराती, शहर के पुरुष और बालक इत्यादि।

स्त्री—

निर्मला—बन्सीलाल की लड़की जिसके साथ वीरेन्द्र का विवाह होता है।

शहर की कुछ स्त्रियां और लड़कियां।

पीले हाथ

पहला दृश्य

[स्थान—संगमपुर विश्वविद्यालय के भवनों के बाहर की सड़क के किनारे एक दूब-मैदान। इस मैदान की दूरवर्ती सीमाओं पर पेड़ लगे हैं। पेड़ों के पीछे एक नाला है। नाले के उस पार सघन वृक्ष हैं सन्ध्या होने को है। सड़क पर से कुछ लोग आ-जा रहे हैं। दूब-मैदान की दूरवर्ती सीमाओं के पास निर्मला टहल रही है निर्मला की आयु लगभग सोलह-सत्तरह वर्ष की है। वह सुन्दर है भड़कीली वेष-भूषा में नहीं है, तो भी उसके स्वच्छ कपड़ों का रंग-मिश्रण उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को ओजस्वी बनाता है वह कभी डूबे हुए सूर्य की ओर देखती है और कभी पूर्वदिशा से आनेवाले अँधेरे को। स्वस्थ शरीर की होने के कारण दिन में पढ़ने-लिखने के कारण शिथिल नहीं हुई है। आल्हाद में है। निर्मला गाती है।]

❀ गीत ❀

पवन तू डाल सुरभि झोली में।
थकी हुई सी, झुकी हुई सी रश्मि सिमटकर चली जा रही,
झुकी हुई सी, लुकी हुई सी निशा झिलमिली सजी आ रही,
गगन ने घोले रंग रोली में।
पवन तू डाल सुरभि झोली में।

(अँधेरा बढ़ता है। जैसे ही निर्मला का गीत समाप्त होता है, वीरेन्द्र पेड़ों की ओट से आता है। वीरेन्द्र लगभग २० वर्ष का स्वस्थ, आकर्षक युवक है। उसकी परीक्षा समाप्त हो चुकी है। उसके आने पर निर्मला जरा चौंक जाती है।)

निर्मला—(मुस्कराहट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए) यह क्या ? कहाँ छिपे थे ? तुम यहाँ कब से थे ?

(वीरेन्द्र में लज्जा का भाव नहीं है। वह भोला बनने का उपाय करता है। परन्तु जान-बूझकर बनावटी भोलेपन को हँसी से दबाता है।)

वीरेन्द्र—तुमने अपनी तान से पवन को झोली में सुगन्धि डालने के लिए बुलाया और वह चला आया। (और भी हँस कर) परन्तु उसकी गांठ में सुरभि, सुगन्धि कुछ नहीं है।

निर्मला—दिन भर की थकावट को दूर करने आयी थी ; गाकर मन बहला रही थी, सो तुम आ कूदे।

वीरेन्द्र—कूदा कहां हूँ ? धीरे धीरे आया हूँ। गाने के बीच में तो आया नहीं। जब स्थायी, अन्तरा, तानें और आलाप समाप्त हो गये तभी तो चुपके से आया—रात की तरह लुका हुआ।

निर्मला—तो यह कहो कि पहले से यहाँ कहीं छिपे थे।

वीरेन्द्र—नहीं तो। जब गगन रोली में अनेक रंगों को घोल रहा था तभी आया था।

निर्मला—तुम बड़े चतुर हो। तुम्हारी तो परीक्षा हो चुकी है। अब मज़े में मटरगश्त कर सकते हो। मेरे दो पर्चे बाक़ी हैं। घर कब जा रहे हो?

वीरेन्द्र—तुम्हारे पर्चे पूरे होने पर। परन्तु इसके बाद हमारी तुम्हारी सबसे बड़ी परीक्षा होनी है।

निर्मला—अर्थात्?—हूँ। वह परीक्षा हम लोगों के हाथ में नहीं है।

वीरेन्द्र—गुसाईं बाबा ने कहा है—

जापर जाको सत्य सनेहू, सो तिहि मिलैं न कछु सन्देहू।

निर्मला—वीरू, इस कठोर संसार में वह कहावत सदा सच्ची उतरती नहीं पायी गयी। (सांस लेती है।)

वीरेन्द्र—(उसकी सांस को सुनकर) मैं भी इतनी ही लम्बी सांस लेता। अपने बहते हुए आंसुओं की मोती की लड़ी को तुम्हारे कोमल सुन्दर करों से तुड़वाता, आकाश और पृथ्वी को गालियां देता, सूर्य की किरणों और चन्द्रमा की झिलमिलियों को कोसता, परन्तु—

निर्मला—परन्तु, किन्तु कुछ नहीं वीरू! हम अपने हृदय के टुकड़े कर सकते हैं, परन्तु अपनी संस्कृति को नहीं तोड़-फोड़ सकते। (फिर सांस लेती है।)

वीरेन्द्र—मैं तो उसको तोड़-मरोड़ डालता, परन्तु यदि संस्कृति ही सहायक हो जाय तो?

निर्मला—क्यों अपने को और मुझको भुलावे में डालकर दुःख का पथ तैयार करते हो? अब जाओ। अन्धेरा हो गया है। मुझको कल के पर्चे की तैयारी के लिए जल्दी जाना है।

वीरेन्द्र—उसके उपरान्त?

निर्मला—उसके उपरान्त अदृष्ट है। भ्रम और फिर विस्मृति। जाओ कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?

वीरेन्द्र—देख लेगा तो क्या कहेगा और क्या कर लेगा ? मैं अपनी भावी पत्नी के पास हूं और तुम अपने होनेवाले पति के पास।

निर्मला—बिलकुल मृग-मरीचिका। भ्रमों का दलदल। जाओ और भूल जाओ। मैं जाती हूं। नमस्ते! (जाने को होती है)

वीरेन्द्र—न दलदल, न कीचड़। मरीचिका भी नहीं। कमलों से भरी झील। पिताजी का पत्र आया है। इसी महीने में मेरी-तुम्हारी भांवर पड़ेगी। तुम्हारे पिताजी से सब बात तय हो गयी है। इसी समाचार को सुनाने के लिए मैं एकान्त की खोज करता हुआ आया। वैसे हिम्मत न पड़ती।

निर्मला—(उमड़े हुए हर्ष को दबाकर) जी हां, आप बड़े लाजवाले हैं! न-जाने कितनी बार टोका-टाकी करके, पत्रों में कविता छपा-छपाकर मुझको कुढ़ाया और हैरान किया।

वीरेन्द्र—अब अखबारों की आड़-ओट लेकर कविता नहीं छपेगी; मेरे-तुम्हारे जीवन के प्रत्येक पल में कविता छपेगी और छलकेगी। पत्र मेरी जेब में है। टार्च ले आया हूँ। उसके उजाले में पढ़ो। (जेब से पत्र और टार्च निकालता है)

निर्मला—मैं आपसे विनय करती हूँ। टार्च मत जलाइए। कोई देख लेगा तो मुझको लाजों डूबना पड़ेगा।

वीरेन्द्र—तो अपने साथ लेती जाओ। अकेले में पढ़ लेना।

निर्मला—मुझको क्या करना है। आप अपने पास ही रखिए। (फिर भी पत्र ले लेती है)

वीरेन्द्र—(आश्चर्य के साथ) आप! आप! यह सब क्या? मुझसे बोलो। तुम कहो। आप क्या? विवाह-सम्बन्ध की बात ने क्या कोई अन्तर पैदा कर दिया है?

निर्मला—(हँसती हुई) अन्तर कैसा? आप प्राणों से बढ़कर हैं? देवताओं से ऊँचे, सागर से अधिक गहरे और आकाश से अधिक रहस्यमय। मैं पुजारिन हूं, आप पूज्य।

(वीरेन्द्र मन ही मन प्रसन्न होता है। अपने को इतना ऊंचा उठा हुआ पाने पर भी उसके प्रेम का उन्माद सन्तुष्ट नहीं होता वह पुजारिन और पूज्य के व्यवधान को बनाये रखने की प्रेरणा अन्तर्मन से पाता है और साथ ही प्रेम के उन्माद की टीस।)

वीरेन्द्र—और मैं सोचता हूं, अपनी देवी को हृदय के पुष्पासन पर बिठाकर लगातार उपासना करता रहूँ। वह वरदान का एक फूल दे और भक्त देवता बन जाय।

निर्मला—मुझको कविता करनी नहीं आती। आप तो बहुत बातूनी हैं।

वीरेन्द्र—वह कविता नहीं थी तो क्या था—

पवन तू डाल सुरभि झोली में!

सुगन्धि झोली या बटुए में नहीं बांधी जा सकती, परन्तु फूल झोली में गूँथा जा सकता है। मेरा नाम एक बार ले लो। समझूंगा एक नहीं अनेक फूल मेरी झोली में आ गये। प्यारी निर्मला, एक बार मेरा नाम ले दो।

(निर्मला हँसती हुई जाती है)

निर्मला—(जाते जाते) आप मेरा नाम ले सकते हैं, परन्तु मैं आपका नाम नहीं ले सकती।

दूसरा दृश्य

[स्थान—विजयपुर नगर की एक गली में गयाप्रसाद के घर की बैठक। बैठक के बीच में एक मेज और कुछ कुर्सियां हैं। एक ओर एक तख्त पड़ा है। उस पर कुछ नहीं बिछा है। भीतर की ओर भी दीवार पर एक कलेण्डर टँगा है। कमरे में और कोई सजावट नहीं है। गयाप्रसाद कुर्सी पर बैठा है। वह प्रगतिशील विचारवाला बनने की कोशिश करता रहा है, परन्तु दफ्तर के

जीवन की लकीरें चेहरे पर इतनी गहरी हैं कि माथे की शिकनें ध्यान के साथ कर्तव्य-पालन करते रहने का अभ्यास अधिक प्रकट करती हैं और प्रगतिशीलता का कम ! बन्सीलाल तख्त पर बैठा है। उनकी अवस्था कुछ उतरी हुई है। दोनों भौंहों के बीच में खड़ी सिकुड़न है। ओठों पर रुखाई। जब वह मुस्कराने का प्रयत्न करता है, तब गर्दन कुछ आगे बढ़ जाती है और आंखों में आवेश-सा आ जाता है। जान पड़ता है—'सहजहिं चितवत मनहुं रिसौहैं,' परन्तु वास्तव में वह सहज क्रोधी नहीं है। स्वाभिमानी है, इसलिए कभी कभी उसके स्वर में टंकार का आभास मिलता है। समय—रात्रि]

बन्सीलाल—(बिना मुस्कराहट के) बाबूजी, समय थोड़ा है। शहर का रास्ता है ! फल-फलारी तो मिल जाती है, परन्तु खाने-पीने का सामान कठिनाई के साथ प्राप्त होता है। बरात थोड़ी ही आनी चाहिए। वैसे मैं किसी और को आपकी सेवा में भेजता, परन्तु सोचा, स्वयम् जाकर निवेदन कर दूँ।

गयाप्रसाद—(मुस्कराकर) फल-फलारी ही सही। बरात में किसको छोड़ूं और किसको साथ ले आऊं? (गयाप्रसाद को अपने दफ्तर के बाबुओं और दफ्तर से लगे हुए अन्य दफ्तरों के बाबुओं और अपने लड़के के मित्रों का ख्याल आ जाता है। साथ ही स्वयम् बरात के नेता होने का चित्र सामने खिंच जाता है प्रतिक्रिया में उसका दम्भ जाग्रत हो जाता है।) देखिए, बाबू साहब, (हँसकर) बहुत लोगों के साथ मेरा व्यौहार है। बहुत बचता हूँ, परन्तु लोग मानते ही नहीं। जिसके यहां बार-बार खाना खाया है, बरात में गया हूं, उनको लड़के की बरात में कैसे धता बता दूँ? (गम्भी

बन्सीलाल—(क्षीण मुस्कराहट के साथ) मैं भी अपने मित्रों की सहायता से खाने-पीने का सामान जुटा लूंगा। (रुखाई के साथ) मैं दहेज की प्रथा के खिलाफ़ हूँ। आप भी हैं। परन्तु बरात की खातिरदारी तो जैसी बन पड़ेगी, करूंगा ही। अर्ज है, थोड़ी बरात लाने की।

(दहेज-प्रथा के खिलाफ़ होनेवाली बात को गयाप्रसाद स्वयम् कहना चाहता था, उसको बे-मौके बन्सीलाल के मुंह से सुनकर वह मन ही मन क्षुब्ध हो जाता है। उसको लगता है, जैसे उसका बड़प्पन बन्सीलाल ने दिन-दहाड़े चुरा लिया हो। परन्तु प्रगतिशीलता के नाते वह अपने क्षोभ को दबा लेता है।)

गयाप्रसाद—मुझको कोई हठ नहीं बाबू साहब! आप कहें मैं लड़के को उसके दो-एक मित्रों और एक ब्राह्मण सहित भेज दूँ? (विजय की मुस्कराहट के साथ) मुझको कुछ नहीं चाहिए। आप बहू दे रहे हैं, सब कुछ दे रहे हैं।

(बन्सीलाल के स्वाभिमान को चोट लगती है। वह तिल-मिला जाता है। परन्तु तुरन्त अपने को क़ाबू में कर लेता है।)

बन्सीलाल—(मुस्कराकर) मैं तो उस युग का स्वागत करूंगा जब बरात में वर और उसके दो-एक मित्र ही आवें। ब्राह्मण की भी अटक न रहे। वर-बधू स्वयम् वचन और प्रण दें और लें, परन्तु शायद हम लोगों के जीवन में ऐसा सम्भव नहीं।

गयाप्रसाद—प्रत्येक देश में विवाह आमोद-प्रमोद का एक खास उत्सव समझा जाता है। हमारे देश में क्यों वह एक नीरस, बेजान रूखी रीति बना डाली जाय?

(बन्सीलाल कुछ बोलना चाहता है, परन्तु अपनी बात का पलड़ा भारी रखने के लिए गयाप्रसाद मुस्कराते हुए जल्दी जल्दी कहता है।) आप जितने बतलावें उतने ही लोग बरात में लाऊँगा और कुछ नहीं, ज़रा उनकी खातिर हो जाय। कुछ आमोद-प्रमोद भी।

बन्सीलाल—(तर्क चढ़ाने का कोई अवसर न देखकर) तीस चालीस व्यक्ति काफ़ी होंगे। आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध मैं कर दूँगा। हमारे यहाँ एक वादन-मंडली है।

गयाप्रसाद—धन्यवाद! रोशनी और मोटरों का प्रबन्ध भी आपको करना होगा।

बन्सीलाल—सब हो जायगा। आप चिन्ता न करें।

गयाप्रसाद—हम लोगों ने अतिशबाज़ी और फुलझड़ी बिलकुल बन्द कर दी है। द्वारचार के समय केवल एक फूल और एक पटाखे का सम्मान, स्त्रियों के हठ के कारण, करना पड़ता है।

बन्सीलाल—याद रक्खूंगा। (मुस्कराकर) रीति-रिवाज़ों के विराट् रूप टूट जाते हैं, परन्तु वे अपना भद्दापन और बेहूदापन एक बहुत छोटे से ही रूप में क्यों न हो, चिरकाल के लिए छोड़ जाते हैं। नमस्ते, महाराज! (जाता है)

(गयाप्रसाद उसको दरवाज़े तक पहुँचाकर कुर्सी पर आ बैठता है) गयाप्रसाद—कितना बदतमीज़ है! बीरू, ओ बीरू!

(बीरेन्द्र तुरन्त आता है)

बीरेन्द्र—मैं तो आ ही रहा था पिताजी! आप बदतमीज़ किसको कह रहे थे!

गयाप्रसाद—(कुढ़कर) संसार को, दुनियां को, जगत को। बदतमीज़ों की कुछ कमी है? ठीक-ठहराव नहीं किया, दहेज़ नहीं लिया, बरात का रेल-किराया टुकरा दिया, कह दिया कि बरात बहुत थोड़ी संख्या में लाऊँगा। द्वारचार के समय के लिए एक फूल और एक पटाखा की रीति-निभाव के लिए कहा तो ये सुधारवादी उसमें भद्दापन और बेहूदापन सूंघते हैं!

(बीरेन्द्र एक क्षण के लिए सिर नीचा कर लेता है)

वीरेन्द्र—(एकाएक हँसकर, लाड़ले लड़के की तरह) मेरा साथी वह सनकी सोहनपाल है न, उसको अवश्य ले चलिएगा, पिताजी वह मुँह-तोड़ बात करने के लिए हम लोगों में प्रसिद्ध है।

गयाप्रसाद—(मुस्कराकर) क्या लड़ाई करवायेगा?

वीरेन्द्र—(हठपूर्वक) ऐं—नहीं पिताजी! चाहे और कोई जाये या न जाये, सोहन को ज़रूर बरात का नेवता दीजिए।

गयाप्रसाद—(गम्भीरता पूर्वक) बरात में जाने का अवकाश किसको है! हाथ जोड़ने पड़ेंगे खुशामद करनी पड़ेगी, तब कहीं थोड़े से लोग चलने को तैयार होंगे। सोहनपाल को निमंत्रण दे देना। और देखो, अच्छे-से-अच्छे काग़ज़ पर निमंत्रण छपवाना। नहीं रेशमी रूमालों पर चटकीली स्याही से छपवाना। और हां, निमंत्रण भड़कीली कविता में हो।

वीरेन्द्र—(नीचा सिर करके मुस्कराते हुए) कविता में! कविता कौन करेगा?

गयाप्रसाद—अरे, जैसे मैं जानता न होऊँ! पत्रों में यह छायावाद, मायावाद, और न-जाने किन किन वादों पर तू कविता लिखता है सो क्या यों ही? जाओ। मुझको केदारनाथ के यहां जाना है। उनको बरात में अवश्य ही ले जाऊँगा।

वीरेन्द्र—उनकी तो तबियत खराब है।

गयाप्रसाद—तब तक अच्छे हो जायेंगे। और फिर यह तो सब लगा ही रहता है—कोई बीमार है—कोई दुखी है, तो कोई काम में उलझा हुआ है। केदार बाबू की तबियत भी देख लूंगा और अवसर ठीक समझूंगा तो बरात में चलने का आग्रह भी करूंगा। आज अवसर न मिला तो निमंत्रण छप जाने पर सही!

वीरेन्द्र—केदार बाबू हैं शानदार।

गयाप्रसाद—तभी तो उनको बरात में ले जाना होगा।

तीसरा दृश्य

[स्थान—विजयनगर की सड़क पर केदारनाथ का घर। घर बड़ा है। दरवाज़ा बन्द है। समय प्रातः काल के कुछ उपरान्त। गयाप्रसाद आता है। दरवाज़े की सांकल खटखटाता है। दरवाज़ा खुलने पर गयाप्रसाद भीतर जाता है। भीतर कमरे में पलंग पर केदारनाथ लेटा हुआ है। उसको ज्वर है। वह निर्बल भी है, परन्तु हँसमुख है। आयु लगभग ४० साल।]

गयाप्रसाद—आज तुम अच्छे हो भाई!

केदारनाथ—हाँ, इतना ही अच्छा हूँ कि मरने के क़रीब नहीं हूँ। रात-भर ज्वर रहा है। अब भी है। नींद नहीं आई। दिलमें धड़कन है।

गयाप्रसाद—(हाथ टटोलकर) अरे यार, यह कुछ भी नहीं। रोग को जितना पालो, उतना ही बढ़ता है। इतने हट्टे-कट्टे होकर तुमने तो चारपाई ही पकड़ली! मैं जब उस रात आया, तब ज़रूर ज्वर कुछ अधिक था, अब तो नहीं के बराबर है। चलो-फिरो ज़रा हवा खाओ तो बुखार रफूचक्कर हो जायगा।

केदारनाथ—वीरू की बरात कब जा रही है?

गयाप्रसाद—वीरू क्या निमंत्रण नहीं दे गया?

केदारनाथ—दे तो गया था, परन्तु पढ़ा नहीं।

गयाप्रसाद—यह लो! तुम्हारा ही जब यह हाल है तब बरात में कौन जायगा? चला जाय वीरू अकेला—मैं तो तुम्हारे बिना जाने से रहा। (गयाप्रसाद आवेश में कुर्सी पर हिलता है)

केदारनाथ—(हँसकर) भाई वाह! दूल्हा का बाप बरात में न जावे! खूब रहेगी बरात!!

गयाप्रसाद—दूल्हा का बाप मैं हूं या तुम हो? मैंने तो क़सम खाली है। मैं न जाऊँगा।

केदारनाथ (अनुनय के साथ गयाप्रसाद का हाथ थामकर) मैं ज़रूर चलता, पर क्या करूँ, विवश हूँ। सौ डिग्री का तो इस समय है। रेल की यात्रा होगी, बरात का कुपथ्य, जागना, हो-हल्ला ठीक नहीं जान पड़ता। क्षमा करना गया बाबू!

गयाप्रसाद—जितने मेरे मित्र हैं, शायद ही किसी के हों। जिन जिन के पास गया, सबने कुछ न कुछ अड़चन बतलायी, किसी को फ़ुर्सत नहीं। मैं तो हाहा खाते थक गया। जी चाहता है, मर जाऊँ।

केदारनाथ—अरे यार, क्या बकते हो? शुभकार्य के समय ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

गयाप्रसाद—(स्वर में और अधिक क्षोभ लाकर) तब और क्या कहूँ? दस-बारह रिश्तेदार हैं, बीरू के दो-एक सहपाठी होंगे। क्या इतने से बरात अच्छी लगेगी? समधी ने स्वागत का अच्छा प्रबन्ध किया है। बिजली की रंग-बिरंगी रोशनी, सजावट, शानदार अभिनन्दन पत्र, गायन-वादन इत्यादि। और बरात होगी कुल चौदह-पन्द्रह आदमियों की। उसमें हम दोनों बाप-बेटे! बेहद किरकिरी होगी।

केदारनाथ—कब जा रही है बरात?

गयाप्रसाद—(आशा की झलक देखकर, उत्साह के साथ) कल दोपहर की गाड़ी से।

केदारनाथ—देखूँ कल तक कैसी तबियत रहती है?

गयाप्रसाद—अच्छी रहेगी, बहुत अच्छी। तुम चलोगे तो और मित्र भी तैयार हो जायेंगे।

केदारनाथ—सो कैसे?

गयाप्रसाद—जब लोग सुनेंगे कि बीमार होते हुए भी बरात में जाने के लिए उद्यत हो, तब काम की उलझनों का बहाना करनेवालों को शर्म आयगी और वे साथ हो लेंगे।

केदारनाथ—हूं।

गयाप्रसाद – हूँ यूँ नहीं, (गिड़गिड़ाकर) मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हू केदार, चलो,चलो भाई ! बड़े आदमी हो। बरात में होने से हमारी शोभा बढ़ेगी—शकुनी बढ़ेगी। बा० बंसीलाल ने जो बरात के स्वागत का बड़ा आयोजन किया है, वह तुम्हारे सरीखे लोगों के सहयोग से ही निखर सकेगा।

केदारनाथ—(मन ही मन सन्तुष्ट होकर) क्या करूँ—क्या करूं ?

गयाप्रसाद—(उसी स्वर में) तुम चलोगे तो और मित्र भी निश्चय ही चलेंगे; किनर-मिनर करेंगे तो रस्सी से बांध ले जाऊँगा। सोचो,बीरू का ब्याह रोज़ रोज़ नहीं होगा !

(केदारनाथ हँसता है)

केदारनाथ—बड़े हठी हो तुम गया बाबू !

गयाप्रसाद—बस तो हां कर दो। सच कहता हूं, इतनी खुशी दूल्हा को ब्याह की न होगी, जितनी मुझे तुम्हें बरात में ले चलने की होगी।

केदारनाथ—और यदि कल बुखार बढ़ गया तो ?

गयाप्रसाद—कदापि नहीं बढ़ेगा। मनोबल से दृढ़तापूर्वक काम लो इधर मैं भी भगवान् से प्रार्थना करूँगा।

केदारनाथ—आशा तो है, ज्वर कल कम हो जाय।

गयाप्रसाद—मलेरिया है—फसली बुखार। बुखार भी कोई बीमारी है ! सब को होता है। किसी किसी को तो साल-भर में दस महीने रहता है। बुख़ार भी चलता है और आवश्यक काम भी चलते रहते हैं।

केदारनाथ—चलूँगा चलूँगा—क्यों जान खाये जाते हो ? कुछ निर्बलता मालूम होती है वैसे तो कोई बात नहीं। दवा खा रहा हूँ। भूख नहीं लगती।

गयाप्रसाद—(प्रसन्न होकर) तुम्हारे लिए दूध-साबूदाने का प्रबन्ध रहेगा, रेल में लेटे चलना। लड़कीवाले के यहां भी बरात के

डेरे में आराम से पड़े रहना। उन लोगों ने वहां बादन की अच्छी मंडली बनायी है। कन्सर्ट—कन्सर्टपार्टी।

केदारनाथ—देखूँगा—जीवन के आनन्द के लिए ज्वर कुछ बढ़ भी जायगा तो चिन्ता नहीं। चलूँगा।

गयाप्रसाद—(प्रसन्नता के अतिरेक में) अब बाईस-तेईस मनुष्य तो भी बरात में हो जायेंगे। बंसीलाल ने चालीस तक के लिए कहा था। कह देंगे और भी कम कर दिये। अब मैं जाता हूँ। लोगों को मनाते-मनूते और चलने की तैयारी कराते काफ़ी देर लग जायगी। कल दोपहर की गाड़ी याद रखना। नमस्ते! (गयाप्रसाद जाता है)

(गयाप्रसाद सड़क पर आ जाता है उसको उसका एक मित्र मिल जाता है।)

गयाप्रसाद—(तपाक के साथ) नमस्ते, भाई साहब, तुम्हारे ही घर जा रहा था। बीरू की बरात का निमन्त्रण तो मिल ही गया होगा?

मित्र—मिल तो गया था, परन्तु यार, उलझनों के मारे नाक में दम है। क्षमा करना, बरात में नहीं जा सकूँगा!

गयाप्रसाद—कैसे न जाओगे? मैं धरना दूँगा। केदार बाबू को देखो, बिचारे अधमरे धरे हैं, परन्तु चल रहे हैं।

मित्र—केदारनाथ चल रहे हैं?

गयाप्रसाद—हां, मैं तुम्हारे किसी बहाने को न सुनूँगा।

मित्र—(परवश-सा) अच्छा भाई, चलूंगा। (दोनों का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[स्थान—नीमनगर की सड़क। सड़क चौड़ी है। उसके एक किनारे बंसीलाल का मकान। मकान के अगवाड़े का पार्श्व बिजली के रंग-बिरंगे गट्टों (बल्बों) से सजा हुआ है। उसी के तोरण, बन्दनवार बनाये गये हैं। मकान के दरवाज़े पर बहुत

सजा हुआ छोटा सा मंडप है। मंडप के आगे कुछ कुर्सियां पड़ी हैं दूसरी ओर से बरात आ रही है। नेपथ्य में मोटरों की धूमधाम, लोगों का गुल गपाड़ा और उन सब के ऊपर पटाखों और भयङ्कर शोर करने वाली हवाइयों का विस्फोट होता है।

सड़क पर नीमनगर के स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाएँ तमाशा देखने के लिए इधर-उधर फिर रहे हैं। मोटरें पीछे हैं, गयाप्रसाद और थाड़े-से अन्य बराती मोटरों से उतर कर पैदल हो गये हैं। इन बरातियों में केदार कूलता-कांखता चला आ रहा है। साथ में सोहनपाल भी है। सोहनपाल एक उद्दण्ड युवक है। वह कुछ कहने के लिए उतावला है, परन्तु उपयुक्त श्रोता न मिलने से मन मसोसकर रह जाता है। हवाइयां और पटाखों के भयङ्कर नाद के कारण नीमनगर निवासी एक अधेड़ मनुष्य व्यकुल हो जाता है। केदारनाथ भी बार बार कानों पर हाथ रख लेता है और घबरा घबरा जाता है। गयाप्रसाद के चेहरे पर कोई हर्ष नहीं है। वह थकावट और बरात के कष्टों के कारण अधीर हो चुका है। समय—रात्रि]

गयाप्रसाद—(केदारनाथ का व्याकुलता देखकर) केदार बाबू मैं आतिशबाज़ी, हवाइयों और पटाखों के बहुत विरुद्ध हूँ। माथा चटका जा रहा है इन आवाज़ों से।

केदारनाथ—(क्षोभ के साथ) फिर किस के कहने से यह तूफान खड़ा हो गया?

गयाप्रसाद—मैंने तो सगुन के एक पटाखे और एक फूल ही के लिए कहा था। यह सब बंसीलाल की मूर्खता है। खाने के लिए अभी तक फीकी चाय और दो दो समोसों के सिवा और कुछ दिया नहीं, अब धूल, धुएँ और धड़ाकों से प्राण लिये लेता है।

नीमनगर निवासी एक अधेड़—(अपने साथियों को सुनाता हुआ।) सत्यानाश जाय इस बरात का। हवाइयों और पटाखों ने कान फोड़ डाले। मकान हिल गये हैं ये सुधारक बने फिरते हैं। राम करे इन पटाखों की तरह ये भी सब फूटकर मर जायँ।

(गयाप्रसाद की तरेरी हुई आंख को देखकर वह अधेड़ भीड़ में ग़ायब हो जाता है। दुःखी होने पर भी केदारनाथ के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती है। सोहनपाल मन ही मन प्रसन्न हो जाता है)-

सोहनपाल—यदि बंसीलाल या किसीलाल के हाथ में ज्वालामुखी और भूकम्प होते तो वह उन सब को भी बांध-पकड़कर इस शोर-गुल के अखाड़े में ला उतारते।

केदारनाथ—(कांखते-कूखते, परन्तु हँसते हुए) और सामने जो पूरे बिलजी घर को लाकर खड़ा कर दिया है, उसका मुक़ाबला कौन करता? सोहन, बतलाओ, नहीं तो धोखा खाओगे।

सोहनपाल—(ओठ दबाकर हँसाने की इच्छा से) पुच्छल तारों को पकड़ लाते, पुच्छल तारों को।

गयाप्रसाद—(क्रोध का दमन करके, ज़बरदस्ती मुस्कराते हुए) ज्वालामुखी, भूकम्प और पुच्छल तारों से बरात का क्या होता भाई सोहनपाल?

सोहनपाल—(गयाप्रसाद की मुस्कराहट के भीतर छिपे हुए क्रोध को न देखकर) बाबू जी, सम्मान, सत्कार, शोभा—शोभा बढ़ती बरात की, शोभा।

गयाप्रसाद—(गम्भीरता के साथ) लड़की वाले के घर के निकट पहुँच रहे हैं, अब चुप रहो।

(हवाइयों के छूटने का फिर शोर होता है)

भीड़ में किसी का स्वर—सत्यानाश जाय बरात का, मर जायँ सब बराती, शहर में आग लगाने को फिरते हैं हत्यारे, मकान पटकने को आततायी।

केदारनाथ—गया बाबू, मेरी तबियत बहुत खराब हो रही है। किसी मोटर से डेरे पर भिजवा दीजिए मुझको। दिल बहुत धड़क रहा है दर्द हो रहा है।

(गयाप्रसाद को द्वारचार के दस्तूर की अधिक चिन्ता है, इसलिए वह अनसुनी करता है)

गयाप्रसाद—(सोहनपाल से) अब निकट आ गए हैं। बीरू को मोटर पर से उतार लाओ।

सोहनपाल—केदार बाबू को सँभालिए, उनकी तबियत ज्यादा खराब हो रही है। दूल्हा तो आ ही जायगा। कहां जाता है?

गयाप्रसाद—(क्षुब्ध होकर) तुम सिवाय हँसी ठठोली के और कुछ करना नहीं जानते। जाओ, उसको लिवा लाओ।

सोहनपाल—(जाते जाते) उन्हें देखिए— केदार बाबू ढेर हुए जा रहे हैं। (प्रस्थान)

केदारनाथ—मैं मर रहा हूँ गयाप्रसाद, मुझको घर भेज दो।

गयाप्रसाद—घर केदार बाबू? घर तो बहुत दूर है। और फिर बरात का क्या होगा? ब्याह क्या होगा किसके साथ भेज दूँ? सब फीका हो जायगा, सब किरकिरा।

(केदारनाथ गिर पड़ता है। उसको गयाप्रसाद उठा लेता है। गयाप्रसाद चिन्तित है।)

केदारनाथ—मैं चाहे मर जाऊं, पर तुम्हारा मज़ा किरकिरा न होने पाए!

(सोहनपाल वीरेन्द्र को लेकर आता है। वीरेन्द्र दूल्हा के वेष में है। सोहनपाल केदारनाथ की बात सुन लेता है।)

सोहनपाल---जीना मरना तो लगा ही रहता है, परन्तु आप स्वस्थ हो जायँगे।

गयाप्रसाद—मैं तुमको डेरे में लिटाए देता हूँ। आराम मिलेगा।

(गयाप्रसाद केदारनाथ को ले जाता है। बरात धीरे धीरे बंसीलाल के मकान की ओर बढ़ती है।)

वीरेन्द्र—तुम कभी-कभी बढ़ जाते हो। कुछ तो लिहाज़ किया करो।

सोहनपाल—वह मुझको नहीं छोड़ते, मैं उनको नहीं छोड़ता। वह सचमुच नहीं मरेंगे, हम तुम चाहे मर जायँ। और हम तुम मर जायँ,—इस शहर का एक बदमाश कहता ही था—तो भी शोभा, बरात की शोभा, अजर और अमर रहेगी। (हँसता है)

(गयाप्रसाद थका-मांदा और चिन्तित आता है)

गयाप्रसाद—(सोहनपाल को हँसता हुआ देखकर कुछ उत्साहित होता हुआ) तुम बीरू को द्वारचार के लिए उधर ले जाओ। हम लोग सभा में आ बैठते हैं। द्वारचार के बाद यहीं लिवा लाना।

सोहनपाल—यदि वह वहीं खो गया तो आपके पास अकेला आ जाऊंगा।

गयाप्रसाद—(सोहनपाल की पीठ ठोककर) तुम बड़े पाजी हो। जाओ, ले जाओ।

(सोहनपाल और वीरेन्द्र जाते हैं)

(गयाप्रसाद बरातियों सहित कुर्सियों पर बैठ जाता है)

(बंसीलाल आता है। वह अधिक थका हुआ नहीं है। रूखे ओठों पर क्षीण मुस्कराहट लाकर, हाथ जोड़े हुये गयाप्रसाद के सामने खड़ा हो जाता है।

बंसीलाल—(गयाप्रसाद को बड़प्पन देने और अपने को छोटा समझे जाने की लालसा से) आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने प्रत्येक नेग–दस्तूर एक–एक चवन्नी का रखा है। चाहता था एक-एक रुपये का तो रखता, परन्तु आप तो कठोर सुधारवादी हैं।

(गयाप्रसाद का अन्तर्मन क्रुद्ध हो जाता है, परन्तु वह ऊपर से मुस्कराता है।)

गयाप्रसाद—बाबू साहब, आपने अच्छा ही किया। सुधरे हुए समाज के सामने मुझको मुँह दिखलाने योग्य रखा। विराजिए न।

बंसीलाल—(मुस्कराहट को लम्बा खींचकर) मैं बराबरी से कैसे बैठ सकता हूँ! लड़की के हाथ पीले ही तो कर पाऊंगा।

(वादन–समाज का प्रवेश। समाज वाले अपने वाद्य साथ लाते हैं।)

बन्सीलाल—और थोड़ा सा प्रमोद हमारे नगर के ये सहयोगी पेश करते हैं।

गयाप्रसाद—ब्याहों में धूम–धड़ाके की जगह यदि यह प्रमोद पकड़ ले तो कितना अच्छा हो **(बनावटी क्रोध के साथ)** मैंने आपसे सगुन के एक पटाखे के लिए विनय की थी, आपने आतिशबाज़ी का तूफान खड़ा कर दिया।

एक बराती—अरे भाई, लोग कैसे जानते कि विजयनगर की बरात आई है।

गयाप्रसाद—(हँसकर) हां, आप लोगों का मन जो रखना था।

(वादन–समाज वाले एक गत बजाते हैं। उसकी समाप्ति पर वीरेन्द्र और सोहनपाल आते हैं, उन दोनों को आव–भगत के साथ बिठलाते हैं। इसके बाद स्त्री वेशधारी एक पुरुष और बड़ी मूंछों वाला चेहरा लगाये हुए दूसरा पुरुष, घुंघरू बांधे हुये, एक ढालकी वाले के साथ आते हैं।)

बंसीलाल—ये लोग जन-नृत्य, फोकडान्स, दिखलायेंगे।

कुछ बराती—अवश्य...'

सोहनपाल – (वीरेन्द्र से) हे भगवान ! क्या विहंगम बीहड़ दृश्य है। फोकडान्स ! जन-नृत्य !!

(वे लोग नाचते हैं। नृत्य की समाप्ति पर चले जाते हैं)

सोहनपाल—(वीरेन्द्र से) यदि जन-नृत्य इस बन्दर-कूदनी और कपि-मुद्रा का नाम है तो निकला कला का कचूमर।

गयाप्रसाद—सोहन, तुम भूलते हो। जन-भावना के साथ इस जन नृत्य को देखना चाहिए। फिर अनुभव करोगे सरल, सच्चे आनन्द को।

सोहनपाल—(अपनी आलोचना की प्रत्यालोचना को सहन न करके) क्षमा करिएगा बाबूजी; जिस वेश्या-नृत्य को हम लोगों ने ब्याह बरातों से निकाल दिया है, वह क्या कुछ इसी प्रकार की भावना से नहीं देखा जा सकता था ? उसमें भी कुछ कला थी !

गयाप्रसाद—बकते हो। वह कला दुराचार फैलाने वाली थी।

सोहनपाल—जाने दीजिए।

बंसीलाल—बस बस, (मुस्कराकर और आंखें निकालकर) आजकल के लड़के मुंह लग जाते हैं।

सोहनपाल—(ओठ सटाकर) जी !

(एक घबराये हुए व्यक्ति का प्रवेश)

घबराया हुआ व्यक्ति—बहुत बुरा समाचार है—बहुत घोर ! भयानक !!

गयाप्रसाद—(अचानक खड़े होकर) क्या हुआ ? क्या है ?

व्यक्ति—बारात के डेरे में जो एक बाबू बीमार थे उनका देहान्त हो गया है। नाम केदारनाथ बतलाया गया है। था न ?

(गयाप्रसाद भर भराकर कुर्सी पर बैठ जाता है।)

गयाप्रसाद—(भराए हुए गले से) ओफ़ !

वीरेन्द्र—(सोहनपाल से) असल में उनको बरात में लाना ही नहीं चाहिए था ।

गयाप्रसाद—बरात चलने के पहले उनका ज्वर बिलकुल उतर गया था । उनकी स्वयं इच्छा बरात में आने की थी । इसलिए वह चल पड़े । मैंने कोई ज़बरदस्ती नहीं की थी ।

एक बराती—ज़बरदस्ती तो आपने किसी के साथ नहीं की ।

सोहनपाल—अन्त में इस नगर वाले उस मनहूस का शाप सफल होकर ही रहा । कहता था—सत्यानाश हो जाय इस बरात का । सो आरम्भ तो हो गया ।

गयाप्रसाद—चुप भी रहोगे या नहीं ? दिल्लगी के लिए समय-कुसमय कुछ नहीं देखते !

एक बराती—अब केदारनाथ के दाह का प्रबन्ध यहीं करोगे ? या शव को घर ले चलोगे ?

गयाप्रसाद—(केदारनाथ के शव की समस्या पर क्षुब्ध अधिक और विह्वल कम होकर) बहुत परेशान हूं, क्या करूँ ? सारा ब्याह अभी सामने रखा है और यह क्या असमय विपद सामने आगी ?

सोहनपाल—यदि वह घर पर जाकर मरते तो बहुत अच्छा होता, बरात की सुन्दरता में कोई अन्तर न आता ।

बन्सीलाल—(अनसुनी करके) जो कुछ करना हो, जल्दी करिए । भांवर का मुहूर्त नहीं टलना चाहिए ।

सोहनपाल—तो क्या किया जाय—लाश को कहीं कूड़ा-घर में फेंक दें ?

बन्सीलाल—आप बहुत उद्दण्ड हैं । आपको अपनी सीमा के भीतर रहना चाहिए ।

(गयाप्रसाद का क्षोभ सोहनपाल पर आसन न जमाकर बन्सीलाल पर उतरना चाहता है; किन्तु उसको अपने सुधारवादी अभ्यास का स्मरण हो आता है, उसका क्षोभ कुछ दब जाता है।)

गयाप्रसाद—बा० बन्सीलालजी, सोहनपाल में लड़कपन की छिछोरी ज़रूर है, परन्तु वह कहता ठीक है। लाश को डाकगाड़ी से किसी के साथ भेजता हूँ। आप भांवर का प्रबन्ध कीजिए।

सोहनपाल—डाकगाड़ी वाले लाश को जब अपने साथ जाने दें तब तो!

गयाप्रसाद—तो वह मोटर में इसी समय जायगी। (**बन्सीलाल** मुँह लटका लेता है।)

गयाप्रसाद—(क्रुद्ध होकर) आप चिन्ता न करें बाबू साहब! मोटर का किराया, पैट्रोल का दाम मैं दूँगा।

बन्सीलाल—मैं किस योग्य हूं। लड़की के हाथ पीले करने जारहा हूँ—

गयाप्रसाद—(क्षोभ की दौड़ में टोककर) आपसे कोई ठीक-ठहराव मैंने नहीं किया। मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए। मैं उसके बिलकुल विरुद्ध हू। मैं आपका एक पैसा नहीं चाहता। जैसे ब्याह का सारा ख़र्चा झेला है, वैसे ही इस ख़र्च को भी सह लूंगा कोई मांगना या भिखारी नहीं हूँ।—

बीरेन्द्र—बाबूजी—

गयाप्रसाद—(क्षोभ को संभालकर) नहीं, मैं तो सीधी-सी बात कह रहा हूँ। (**बन्सीलाल को लौ-सी भरी आंख से देखता है।**)

बन्सीलाल—मैंने तो कुछ भी नहीं कहा। लड़कीवाला हूँ, कह भी क्या सकता हूँ। मोटर हाजिर है। बा० केदारनाथ के शव को भेज दीजिए। पैट्रोल का भी प्रबन्ध है। आपको कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। केवल यह प्रार्थना है कि भांवर की सायत न चूकने पावे।

(**गयाप्रसाद स्वीकृति-सूचक सिर हिलाता है।**)

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान – नीमनगर की एक सड़क पर ज़रा बड़ा-सा मकान इसी में वीरेन्द्र की बरात का डेरा है। दरवाजा खुला है। केदारनाथ का शव मोटर से भेजा जा चुका है। भात्तर भी पड़ चुकी है। पंच डेरा, नोटाठी का नेग होना शेष है। बन्सीलाल नाते-दारों, लड़कों और ब्राह्मणों को लेकर आता है। वे मकान के भीतर हैं मकान के एक बड़े कमरे में गयाप्रसाद इत्यादि बराती स्वागत के लिए पहले से तैयार हैं। लड़की पक्ष के लोग एक ओर बैठ जाते हैं। समय–दिन]

बन्सीलाल –(मुस्कराते हुए, परन्तु उसकी मुस्कराहट के साथ उसकी आँखों के गंटे नहीं निकल रहे हैं) इस अवसर पर समधी को नहीं आना चाहिए, परन्तु आप सुधारवादी हैं और मेरी धारणा है कि परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिए सभी अवसरों का हम लोगों को उपयोग करना चाहिए। सेवा में एक अभिनन्दन-पत्र भी भेंट करना है। होना तो चाहिए था द्वारचार के भी पहले, परन्तु उधर हम लोग बहुत व्यस्त रहे, इधर यह दुर्घटना हो गयी।

(उसके 'व्यस्त' शब्द के अर्थ में किसी भारी भरकम तैयारी का दम्भ समझकर—क्योंकि बरात छोटी थी और खातिरदारी कोई बड़ी नहीं हुई, बिजली की रोशनी और पटाखों धूम-धड़ाकों को स्मृति के साथ मना-मनाकर लाये हुए एक मित्र बराती का देहावसान संयुक्त होने की कल्पना करके, गयाप्रसाद को ग्लानि होती है; परन्तु वह उसको अप्रकट रखता है।)

गयाप्रसाद—जी·····ई। प्रेम एक हृदय से दूसरे हृदय की ओर बढ़ता ही है।

एक लड़का अभिनन्दन-पत्र पढ़ता है:—

आप आकाश हैं, हम पाताल के एक टेले। आप सागर हैं, हम एक क्षुद्र डाबर। आप गंगा नदी हैं, हम एक छोटे से नाले। आप हिमालय हैं, हम एक छोटी सी टेकड़ी। आप विशाल वट-वृक्ष हैं, हम एक छोटे से तिनके। आप महान् हैं, हम लाघव से भी लघु। हम आपका अत्यन्त स्नेह के साथ स्वागत करते हैं। (लड़का गयाप्रसाद को अभिनन्दन-पत्र भेंट करके बैठ जाता है।)

ब्राह्मण—आप दशरथ हैं। बड़ी यात्रा के कष्ट सहकर आये हैं। हमारे जनकजी ने आपका कोई सत्कार नहीं कर पाया।

बन्सीलाल—मैं तो कुछ भी नहीं कर सका। लड़की के केवल हाथ पीले कर दिये हैं।

(बीरेन्द्र सोहनपा को उत्तर देने के लिए संकेत करता है। गयाप्रसाद देख लेता है। वह भी सोहनपाल को बोलने के लिए उकसाता है।)

गयाप्रसाद - सोहनपाल, तुम वैसे तो बहुत चबड़-चबड़ किया करते हो, इस अवसर के अनुकूल तुम भी कुछ कहो।

बन्सीलाल— (बरबस मुस्कराते हुए आँख फाड़कर) बरात और ब्याह की शोभा तो लड़के ही होते हैं।

सोहनपाल—एड्रेस, अभिनन्दन की प्रथा बहुत अच्छी चल पड़ी है। लड़कीवाला छोटा और लड़केवाला बड़ा यह कल्पना हमारे रक्त के कण-कण के परमाणु-परमाणु में है।

बन्सीलाल—सो तो ठीक ही है। सुन्दर है बाबू!

सोहनपाल—जिन्होंने लेन-देन, टीक-ठहराव, दहेज इत्यादि को बन्द कर दिया है, वे खातिर चाहते हैं। स्वाभाविक है।

बन्सीलाल—आज का भोज मैं बरात के डेरे पर ही देना चाहता हूँ, आप मेरे घर कष्ट न करें।

गयाप्रसाद—यानी आप हम लोगों को यहां के यहीं अपने शहर से बाहर कर देना चाहते हैं, निकाल देना चाहते हैं। आप बड़े आदमी हैं न! (**क्रुद्ध स्वर में**) हमारा अपमान मत कीजिए।

बन्सीलाल—(**दबे हुए क्षोभ के साथ**) मैंने अपमान किया है? इतनी खुशामद, इतनी खातिरदारी के बाद भी अपमान! आप कहते क्या हैं! घर पर बुलाने से विदा के प्रबन्ध में गड़बड़ होने की आशंका है।

गयाप्रसाद—ओहो! बड़ी भारी विदा करनी है न! यहीं भोजन भेजना रिवाज़ के विरुद्ध है।

वीरेन्द्र—बाबूजी, सोहनपाल को अभी कुछ कहना है।

गयाप्रसाद—(**संयत होकर**) हां, हां।

सोहनपाल—मुझको अभिनन्दन का उत्तर पूरा करना है। ज़रा धीरज धरिए। आप चौड़ी सड़क हैं, हम केवल एक छोटी-सी पगडंडी। आप बड़े भारी ढांके हैं, हम एक छोटे से कंकड़। आप बड़े भारी गेहूं हैं, हम केवल भूसा। आप तूफ़ान हैं, हम महज़ पंखे की हवा। आप डाकगाड़ी, नहीं बड़ी लम्बी मालगाड़ी हैं, हम केवल छकड़ा। आप शकर हैं, हम नीम की निबौरी। कहां आपके पलंग और कहां हमारी भूमि—**गयाप्रसाद मन ही मन प्रसन्न होता है, परन्तु ऊपर से रोब प्रकट करता है। लेकिन इस अभिनय को निभा नहीं पाता है**)

गयाप्रसाद—हो गया जी, बहुत हुआ। वही सब पुरानी बातें; उनको अभिनन्दन का नया रूप दे दिया गया है। हमारी जाति में लड़के अन्त्याक्षरी और बेतबाजी किया करते थे। वह इससे कहीं अधिक मनोरंजक होता था। (**हंस पड़ता है।**) और भी कुछ होता था—

सोहनपाल—बेतबाज़ी अर्थात् घूंसा, डंडा और—

गयाप्रसाद—(बनावटी क्रोध के साथ जो हंसी का विरोध नहीं कर पाता) चुप, चुप। बेतबाजी का मतलब है कविताबाजी। तुमने बिना तुक की कविता कर तो डाली—आप लम्बी मालगाड़ी, हम केवल छकड़े ! आप शकर, हम नीम की निबौरी !! ह ! ह !! ह !!!

बन्सीलाल—(रुखाई के साथ, परन्तु मुस्कराकर) आप भी लड़कों में शामिल हो गये !

सोहनपाल—क्यों न हो बाबू साहब ? स्टेशन पर उतरने के बाद ही एक एक कटोरी असली चाय मिली, मिर्चों से भरे दो दो समोसे मिले ! खुमारीवाली पूड़ी !! खमीरदार साग !! लोचवाला अचार !!!! और छलकता हुआ दही !!!!

एक बराती—और कचौड़ी ?

सोहनपाल—और कचौड़ी इतनी खस्ता कि दांतों को खस्ता कर दे।

बन्सीलाल—(क्रोध को निस्सीम प्रयत्नसे दबाकर) सब सामान हलवाई के यहां बनवाया गया था। पूरे दाम दिये हैं। मैं नहीं जानता था कि वह इतना बड़ा गधा है !

गयाप्रसाद—इस शहर में क्या वही हलवाई एक गधा है या और भी कोई ? (बराती हंस पड़ते हैं)

बन्सीलाल—(क्रोध के दमन में अशक्त होकर) देखिए, हमने अपनी लड़की दी है इज्ज़त नहीं दी है।

(वीरेन्द्र वहां से उठकर चला जाता है।)

गयाप्रसाद—इस शहर में गधे ही नहीं, बल्कि गँवार भी बहुत जान पड़ते हैं।

एक बराती—हम गँवारी का इलाज जानते हैं।

बन्सीलाल—कौन गँवार है, इसके प्रमाणित करने की ज़रूरत नहीं है। कान खोलकर सुन लीजिए। मैंने पैर पूजे हैं, पीठ नहीं पूजी है।

बराती इस चुनौती का तात्पर्य समझकर उठ खड़े होते हैं, सोहनपाल बीच में आ जाता है।)

सोहनपाल—आप आकाश हैं, ये पाताल! आप हिमालय हैं, ये एक टेकरी। आप बर के पेड़ हैं, ये तिनके। अन्तर बनाये रखिए; दूर रहिए। निकट के संघर्ष में मामला निरन्तर हो जायगा। (कुछ बराती और घराती बीच बिचाव करते हैं।)

बंसीलाल—(संयत होकर कुछ बीच में फुफकार-सी छोड़ता हुआ) लड़की वाले को नीच, हेटा, गिरा हुआ समझा जाता है। परन्तु मैं ऐसा नहीं हूँ। सारा नगर मुझको मानता है। आप लोग मुझको धूल में मिलाना चाहते हैं!

सोहनपाल—आपके अभिनन्दन-पत्र को कोई सार्थक नहीं करना चाहता, विश्वास रखिए। आप लोग बनावटी व्यवधान को समाप्त करके अपने असली रूप में आ गए। यह संसार के इतिहास की कोई अनहोनी घटना नहीं है। अब बिदा के शुभ-कार्य को पूरा करिए। क्योंकि सारी आतिशबाज़ी और साग-तरकारी तथा भोग-ब्यारी में वही एक असली तथ्य की बात है।

बंसीलाल—(बिलकुल ठण्डा होकर) मैं क्षमा चाहता हूँ। कोई अपशब्द निकल गया हो तो क्षमा कीजिएगा।

गयाप्रसाद—(विचारपूर्वक) पैर पूजे हैं, पीठ नहीं पूजी है! हूँ! हम लोगों को पीटना चाहते थे!!!

बंसीलाल—क्षमा कीजिए। मैं हाथ जोड़ता हूं—न मालूम इस अभागी जीभ से क्या से क्या निकल गया!

गयाप्रसाद—कुछ और निकलता तो यह जनवासा अखाड़ा बन जाता, परन्तु जिस तरह मैंने ठीक-ठहराव लेन-देन दहेज़ आदि सब छोड़ा, बरात का किराया तक गांठ से दिया, उसी तरह आपकी अभद्रता को भी उपेक्षा के साथ छोड़ता हूं। बिदा की तैयारी करिए। जाइए।

बंसीलाल—भोजन यहीं भेज दूं या मेरी कुरिया पर ग्रहण कीजिएगा ?

गयाप्रसाद—यहां भोजन का कराया जाना प्रथा के प्रतिकूल होगा। क्या आपके यहां की स्त्रियां अपने हाथ से रसोई नहीं बनातीं ?

बंसीलाल—कभी कभी। इसलिए हलवाई के यहां प्रबन्ध करना पड़ा।

गयाप्रसाद—(पूरी शांति स्थापित करने की अकांक्षा से ओठों पर मुस्कराहट लाकर) यदि हो सके तो समधिन साहब के हाथ की बनी रसोई खाऊंगा।

सोहनपाल—परन्तु उसमें खुमारी, खमीर और लोच कहां से आयगा ?

गयाप्रसाद—(वास्तविक क्रोध के साथ) चुप, चुप !

बंसीलाल—लड़के हैं—आजकल के लड़के !

(सोहनपाल कुछ कहना चाहता है; परन्तु उसे मन में दबाकर रह जाता है। बंसीलाल अपने साथियों सहित जाता है।)

छटवां दृश्य

[स्थान—नीमनगर में सड़क पर बंसीलाल का मकान। नेपथ्य में मोटरों की भड़भड़ और शहनाई। शहनाई के साथ बरातियों का प्रवेश। समय—सन्ध्या। बरातियों के आते ही उनके लिए कुर्सियां डाल दी जाती हैं। वीरेन्द्र और सोहनपाल पास बैठ जाते हैं। शहनाई वाले भीतर चले जाते हैं।]

गयाप्रसाद—बिदा का शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिए। नहीं तो दूसरी गाड़ी भी चूक जायगी। भोजन करते-कराते एक तो चूक ही गई।

एक बराती—तो क्या होगा ? हरि अनन्त, हरिकथा अनन्त। समय अनन्त है। रेलगाड़ियां अनन्त हैं—एक जाती है, दूसरी आती है।

दूसरा बराती—हां, हां ! तब तक एकाध फालतू बराती और ढेर हो जायगा।

सोहनपाल—बरात की शोभा बनी रहे, बराती जैसे यहां मरे, तैसे घर मरे।

(बंसीलाल आता है)

बन्सीलाल—थोड़ी सी देर और है। क्या करूं स्त्रियों के मारे विवश हूँ। उनके नेग-दस्तूरों की कोई सीमा ही नहीं।

सोहनपाल—बाबू साहब, सीमा तो केवल बिचारे-जीवन की है।

बन्सीलाल—(अपनी बात के उत्तर में किसी की न सुनकर सन्तोष के साथ) आप विकट शब्दों का व्यवहार करते हुए भी बात सार की कहते हैं। गद्य में ही कुछ कविता सुनाइए।

गयाप्रसाद—जिसमें रेलों पर रेलें आती रहें और चूकती रहें !! ह !! ह !!! (इस बेतुकी हँसी पर बन्सीलाल के चेहरे पर फिर रुखाई आ जाती है।)

बन्सीलाल—मैं भीतर जाकर स्त्रियों को झंझोड़ता हूँ, तब तक बरातियों के तिलक की रस्म पूरी कर दूं।

(बन्सीलाल सब बरातियों को एक२ रुपया भेंट करता है और वे ले लेते हैं। अन्त में वह सोहनपाल के पास जाता है और उसकी ओर रुपया बढ़ाता है।)

सोहनपाल—मुझे इस डांड से मुक्त रखिए। ठीक-ठहराव, दहेज, लेन-देन जाते जाते भी इस पल्लले को छोड़े जा रहा है।

गयाप्रसाद—स्वीकार करो, सोहन ! यह भेंट इनके दरवाज़े की शोभा है।

सोहनपाल—बाबूजी, दरवाज़े की शोभा किवाड़ होते हैं या एकाध बराती ठण्डा हो जाय तो वह दरवाज़े और बारात की शोभा बन सकता है। मैं तो अपनी हड्डी-पसली को घर समूचा ले जाने का पक्षपाती हूँ।

वीरेन्द्र—बड़े लफंगे हो।

सोहनपाल—यह सनद मुझको बा० बन्सीलाल जी से मिलनी चाहिए थी, न कि तुमसे।

बन्सीलाल—(**सच्ची मुस्कराहट के साथ**) कोई न कोई सनद तुमको दूंगा अवश्य भाई साहब, परन्तु तुम्हारी एकाध चिटपिटी सुनकर।

सोहनपाल—चलते समय सुनाऊँगा। अतुकान्त नहीं, तुकान्त कविता। (**सोहनपाल रुपया नहीं लेता। बन्सीलाल बधू की बिदा के लिए भीतर जाता है।**)

वीरेन्द्र—तुम और कविता ! लू की लपेट में ओले ! तुम तो बहकी बहकी कहते रहो।

सोहनपाल—बहुत से कवि जो कविता करते हैं, वह क्या है ? बौखलाया हुआ गद्य ! मैं जो कुछ कहूँगा, वह बे-सिर-पैर का न होगा।

वीरेन्द्र—क्या कहेगा भलेमानस, मुझको भी सुना दे।

सोहनपाल—जो कुछ कहूंगा, बिलकुल सही और वास्तविक; पुराने बोल की।

(**बन्सीलाल आता है**)

बन्सीलाल—आपकी गाड़ी न चूकेगी। बिदा होने में केवल एक घण्टे की देर है।

सोहनपाल—केवल एक घण्टे की ! इसके बाद हम लोग एक घण्टे में अपने डेरे पर पहुंचेंगे, फिर केवल एक घण्टे उपरान्त स्टेशन। तब तक केवल दो गाड़ियां चूक जायँगी। फिर बरातियों का केवल डेरा, बिना पलंग-चारपाई की सुनसान रात और सबेरे केवल एक गाड़ी ! वह भी यदि एक कटोरे शुद्ध चाय और केवल दो समोसों के फेर में चूक गयी—तो बस हिमालय पर्वत और छोटी-सी टेकड़ी के अन्तर पर आंखें टक-टकाते रहें !

बन्सीलाल—(लाज के साथ) जनवासे में पलंग-चार-पाई नहीं पहुंची ! आप लोगों ने कहलवाया भी नहीं !! मैंने प्रबन्ध तो कर दिया था।

एक बराती—पलंग-चारपाइयों को हलवाई पकाने से भूल गया होगा। ह ! ह !! ह !!!

(बन्सीलाल माथा ठोककर सिर नीचा नवा लेता है।)

गयाप्रसाद—(समधी के इस प्रायश्चित से सन्तुष्ट न होकर) खैर, कोई बात नहीं। विदा की जल्दी करवाइए।

सोहनपाल—जी हां, बात तो कुछ नहीं। अब उस कविता को सुन लीजिए:—

भूमि परन भूखन मरन जौ बरात कौ देत,
घर सो टेर बुलायके, फेर खबर नहिं लेत।
फेर खबर नहिं लेत, कलेवा देत के देतइ नहियां,
धरें गठरिया मूड़ बात कोउ पूँछत नहियां।
कह गिरधर कविराय बरैं जो ईधक बीधौ;
घरै पहुंच पै पायँ देहिं ब्राह्मण खों सीधौ।

(बन्सीलाल प्रयत्न करने पर भी हँसी को नहीं रोक पाता)

बन्सीलाल—यह फबती हमारे समधी साहब पर जाकर कसती है।

सोहनपाल—तो आप केवल यही सनद देते हैं ?

(गयाप्रसाद की समझ में नहीं आता कि दहेज ठीक-ठहराव इत्यादि को छोड़ देने पर भी कुछ और भी त्याग की जरूरत है या बाकी रहती है ।)

(भीतर शहनाई बजती है ।)

बन्सीलाल – अब विदा में विलम्ब नहीं है ।

सोहनपाल—अच्छा ! ओह !!

गयाप्रसाद—तुम फूहड़ हो ।

बीरेन्द्र – निःसन्देह ।

सोहनपाल—बड़ी बात है, बरात की शोभा बनने से तो बच गया !

सातवां दृश्य

[स्थान—संगमपुर विश्वविद्यालय के भवनों की बाहर की सड़क के किनारे दूब मैदान । निर्मला और बीरेन्द्र स्नातक (ग्रेजुएट) की टोपी और चोगा पहने हुए आते हैं। वे अपनी सनद हाथ में लिये हुए हैं। समय मध्यान्ह के कुछ समय बाद ।]

बीरेन्द्र—उस दिन संध्या समय इसी स्थान पर तुम्हारा गीत सुना था—पवन तू डाल सुरभि झोली में । कितना मधुर था, कितना मोहक । एक बार फिर गाओ ।

निर्मला—वह संध्या थी, यह दोपहर है । वह अँधेरा था, यह उजाला है । उस समय पवन में झूल रहे थे, अब ठोस पृथ्वी पर पैर रख रहे हैं । उस समय तारों के धुँधले प्रकाश में गीत ही गीत था, अब सामने जीवन की सचाई ही सचाई है ।

बीरेन्द्र—तो क्या जीवन की सचाई और मन के गीत का मेल नहीं निभ सकता !

निर्मला—क्यों नहीं निभ सकता ? परन्तु तुम जब निभने दो तब न !

वीरेन्द्र—मैं कोई बाधा नहीं डालूंगा। जैसा रहन-सहन रखना चाहो, रखो। तुमको इतने दिन में मेरी प्रकृति मालूम हो गई। सन्देह क्यों करती हो?

निर्मला—मैं तुम्हारी ही तरह विश्वविद्यालय की स्नातक हो गई हूँ। तुम निर्वाह के लिए कुछ न कुछ काम करोगे। मैं भी उपार्जन के लिए कुछ करना चाहती हूँ। स्वीकृति दो।

वीरेन्द्र—मेरे होते हुए तुम क्या कोई नौकरी करोगी? यह कैसे सम्भव है?

निर्मला—तभी मैंने कहा—तुम निभने दो तब न! स्त्री को समान पद देने के पक्षपाती हो; हो न?

वीरेन्द्र—बिलकुल। सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं। मैं अकेला क्या, मेरे सरीखे विचार वाले और भी अनेक हैं।

निर्मला—परन्तु तुमने या तुम-सरीखे विचार वालों ने केवल उदारतावश वह भावना बनाई है। उदारता का पाया बहुत प्रबल या स्थायी नहीं होता। स्त्री की दुर्दशा का कारण उसकी आर्थिक परतन्त्रता है। जहां उसको आर्थिक स्वावलम्बन मिला नहीं; वह स्वाधीन हुई।

वीरेन्द्र—मेरे मित्र, पिता जी, पड़ौसी क्या कहेंगे?

निर्मला—'क्या कहेंगे' की शंका ने ही स्त्री को पुरुष की उदारता के होते भी गिरा रखा है। तुमको क्या इसके समझाने की भी आवश्यकता है?

वीरेन्द्र—कहां नौकरी करोगी? मैं रहूँगा विजयनगर में और तुम न जाने किस नगर में नौकरी करोगी! असंभव!

निर्मला—इस बाधा को मैं भी अनुगत कर रही हूँ। असल में यह हमारी शिक्षा का दोष है। किसानों और मज़दूरों की स्त्रियां अपने अपने पुरुषों के साथ रहकर जीवन-निर्वाह के उपायों में उनका हाथ बटाती हैं। पढ़ी लिखी न होने पर भी वे हम लोगों की अपेक्षा अधिक

स्वाधीन हैं। स्त्रियों की शिक्षा में यदि घरू, शिल्प, उद्योग और धन्धे सिखलाए जायँ तथा डाक्टरी इत्यादि पढ़ाई जाय तो समस्या सहज हो सकती है। मैं विजयनगर में ही नौकरी करूंगी। किसी पाठशाला में, क्योंकि यह सनद और कोई काम नहीं दिलवा सकती। (मुस्कराकर) अब तो तुमको कोई इनकार नहीं ?

वीरेन्द्र—(सोचते हुए) इसमें तो कोई विशेष बाधा नहीं, देखूं, वह सनकी सोहनपाल क्या कहता है ?

निर्मला—तुमको बधाई देगा। उसकी सनक में सार है।

वीरेन्द्र—मैं तुम्हारे हठ को समझ गया। उसका आदर करूंगा। अब वह गीत गा दो। हो गया न जीवन की सचाई और मन के गीत का मेल !

निर्मला—(मुस्कराकर) अच्छा, पर धीरे-धीरे। नहीं तो सारे स्नातक यहीं दौड़े चले आयेंगे।

(दोनों का गाते-गाते प्रस्थान)

❀ यवनिका ❀

वर्मा जी की कृतियों पर
कुछ सम्मतियां

डा० अमरनाथ झा—वाइस चान्सलर काशी विश्वविद्यालय—'वर्मा जी की कृति प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखती। आजके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार वे हैं।'

डा० धीरेन्द्र वर्मा—यह निश्चित है कि हिन्दी के यह सर्वश्रेष्ठ मौलिक लेखक हैं।

डा० श्री बाबूराम सक्सेना—हिन्दी साहित्यकारों में वर्मा जी का स्थान बहुत ऊँचा है। उपन्यासकार तो उनकी तुलना का कोई है ही नहीं।

श्री वियोगी हरि—साहित्यकार वृन्दावनलाल वर्मा को पाकर हमारे भारत राष्ट्र का मस्तक ऊँचा हुआ है।

माननीय श्री पंतजी—प्रधान मंत्री, यू० पी०—वृन्दावनलाल जी वर्मा का ऐतिहासिक उपन्यासकारों में विशिष्ट स्थान है।

N. C MEHTA, I. C. S., Chief Commissioner, Himachal Pradesh, Simla writes :— "I have read some of the books by Shri Brindaban Lal Varma with great pleasure. I have always found complete mastery of the language and unusual power of vivid description. His knowledge of Bundelkhand, its people and its folklore is unique and he deserves the warmest congratulations for putting before the public this exceptional knowledge so efficiently and vividly. ....."

प्रेस में—

कलाकार का दण्ड

कहानी संग्रह

मूल्य लगभग २॥) रु०

वृन्दावनलाल वर्मा-साहित्य

प्रकाशित

उपन्यास

लक्ष्मीबाई	६)
कचनार	४॥)
मुसाहिबजू	१॥)
अचल मेरा कोई	२॥।)
गढ़कुंडार	४॥)
विराटा की पद्मिनी	५)
कुण्डली चक्र	२)
कभी न कभी	२॥)
प्रेम की भेंट	१॥)
प्रत्यागत	१॥।)
हृदय की हिलोर	१)

नाटक

राखी की लाज	१।)
झांसी की रानी	२)
काश्मीर का कांटा	१)
फूलों की बोली	१।)
बांस की फांस	१)
लो भाई पंचो लो	॥।)

प्रेस में

उपन्यास

माधवजी सिंधिया
सत्रह सौ उन्तीस
आनंदघन
टूटे कांटे

कहानी

हरसिंगार
दबे पांव
कलाकार का दण्ड

नाटक

हंस-मयूर
मंगलसूत्र
कब तक
नील कण्ठ
सगुन
पायल

हमारा आगामी प्रकाशन—

"मंगलसूत्र"

अद्वितीय रोचक और कलात्मक नाटक

मयूर-प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी।